सावन बरिस मेह अति पानी। भरनि भरि होइ विरह झुरानी।।

लागु पुनर्वसु पीर न देखा। मैं बावरि कहाँ कंत सरेखा।।

रकत के आँसू परे ज्यों बूंदा। रंग चली जिमि बीर बहूता।।

सखिन्ह रचा पिंग झुलोला। हरियर भूमि कुंमति तन चोला।।

हिय हिडोला जस डोले मोरा। विरह झुलावै देइ झकोरा।।

…

किमि करि भेटौं कंत तोहि, ना मोहि पाँव न पंख।।

प्रसंग

रत्नसेन के वियोग में नागमती अत्यन्त व्याकुल है। आषाढ़ बीत चुका है और अब सावन आ गया है। वर्षा अपने चरम पर है। चारों ओर हरियाली, झूले, सखियों का उल्लास और प्रकृति का सौंदर्य है, परन्तु प्रिय के अभाव में नागमती का हृदय विरह की ज्वाला में जल रहा है। वर्षा ऋतु उसके लिए आनंद नहीं, बल्कि असहनीय पीड़ा बन गई है।

व्याख्या

सावन में अत्यधिक वर्षा हो रही है। धरती जल से भर गई है, परन्तु नागमती का हृदय विरह की अग्नि में सूख रहा है। बाहर प्रकृति में शीतलता है, किन्तु भीतर उसके मन में दाह है।

पुनर्वसु नक्षत्र लग गया है, जो शुभ और मिलन का समय माना जाता है, परन्तु उसे अपने प्रिय के दर्शन नहीं हुए। वह स्वयं को बावली कहती है — मेरा प्रिय कहाँ है? इस प्रकार समय का अनुकूल होना भी उसके लिए व्यर्थ है।

विरह की तीव्रता इतनी बढ़ गई है कि उसकी आँखों से रक्त के समान आँसू गिर रहे हैं। उसका रंग उड़ गया है, जैसे युद्ध में घायल वीर का रक्त बह जाता है। यहाँ कवि ने अतिशयोक्ति और रूपक का सुंदर प्रयोग किया है।

सावन में सखियाँ झूले डालकर झूल रही हैं। हरी-भरी धरती देखकर वे हरे वस्त्र धारण कर रही हैं। चारों ओर उल्लास है, परन्तु नागमती उस आनंद से वंचित है। उसका हृदय भी झूले की तरह डोल रहा है, परन्तु उसे विरह झकोरे दे रहा है।

चारों ओर जल भर गया है, रास्ते दिखाई नहीं देते। यह बाहरी दृश्य नागमती की आंतरिक स्थिति का प्रतीक है। उसका मन भँवरे की तरह चंचल और व्याकुल हो गया है।

वह कहती है — सारा संसार जल में डूबा हुआ है और मेरी जीवन-नाव का कोई खेवैया नहीं है। यहाँ जीवन को नाव और प्रिय को नाविक के रूप में रूपायित किया गया है। प्रिय के बिना उसका जीवन दिशाहीन हो गया है।

अंत में वह कहती है कि मेरे और प्रिय के बीच पर्वत, समुद्र और अगम वन हैं। मैं तुमसे कैसे मिलूँ? मेरे पास न पैर हैं, न पंख। यह उसकी असहायता और निराशा की चरम अभिव्यक्ति है।

1.

“सावन बरिस मेह अति पानी। भरनि भरि होइ विरह झुरानी।। ”

सावन मास में अत्यधिक वर्षा हो रही है। चारों ओर पानी भर गया है। परन्तु इस जल-भराव के साथ-साथ नागमती का हृदय विरह से सूख रहा है।

बाहर वर्षा का जल है, भीतर विरह की आग।

बाहरी प्रकृति और आंतरिक मनःस्थिति का विरोधाभास।

2.

“लागु पुनर्वसु पीर न देखा। मैं बावरि कहाँ कंत सरेखा।। ”

पुनर्वसु नक्षत्र लग गया है, परन्तु मुझे प्रिय के दर्शन नहीं हुए। मैं बावली हो गई हूँ — मेरा प्रिय कहाँ है?

समय मिलन के अनुकूल है।

पर प्रिय अनुपस्थित है।

‘बावरि’ शब्द विरह की मानसिक व्याकुलता दर्शाता है।

3.

“रकत के आँसू परे ज्यों बूंदा। रंग चली जिमि बीर बहूता।। ”

मेरी आँखों से रक्त के समान आँसू गिर रहे हैं। मेरा रंग उड़ गया है, जैसे युद्ध में घायल वीर का रक्त बह जाता है।

यहाँ अतिशयोक्ति और रूपक अलंकार है।

विरह की पीड़ा शारीरिक क्षीणता में बदल गई है।

4.

“सखिन्ह रचा पिंग झुलोला। हरियर भूमि कुंमति तन चोला।। ”

मेरी सखियाँ झूले डालकर झूल रही हैं। हरी-भरी धरती देखकर वे हरे वस्त्र धारण कर रही हैं।

सावन में झूला झूलने की परंपरा।

अन्य स्त्रियाँ आनंद मना रही हैं।

पर नागमती उस आनंद से वंचित है।

5.

“हिय हिडोला जस डोले मोरा। विरह झुलावै देइ झकोरा।। ”

मेरा हृदय झूले की तरह डोल रहा है। विरह उसे झकोरे देकर झुला रहा है।

अत्यंत सुंदर रूपक।

बाहर सखियाँ झूला झूल रही हैं।

भीतर नागमती का हृदय विरह के झकोरों से डोल रहा है।

6.

“बाट असूझ अगाध गंभीरा। जिउ बाउर भा सवें भँभीरा।। ”

रास्ता दिखाई नहीं देता, चारों ओर पानी और कीचड़ है। मेरा मन बावला होकर भँवरे की तरह भटक रहा है।

बाहरी अंधकार = आंतरिक भ्रम

मन की चंचलता का सुंदर चित्रण।

7.

“जग जल बूड़ि जहाँ लगि ताहीं। मोर नाव खेवक बिनु नाहीं।। ”

सारा संसार जल में डूबा हुआ है। मेरी नाव (जीवन) का कोई खेवैया (पतवार चलाने वाला) नहीं है।

जीवन = नाव

प्रिय = नाविक

प्रिय के बिना जीवन डूब रहा है।

8.

“परबत समुद्र अगम बन बहु डंग। किमि करि भेटौं कंत तोहि, ना मोहि पाँव न पंख।। ”

मेरे और प्रिय के बीच पर्वत, समुद्र और अगम वन हैं। मैं तुमसे कैसे मिलूँ? मेरे पास न पैर हैं, न पंख।

दूरी की असहायता का चरम चित्रण।

मिलन असंभव-सा प्रतीत होता है।

यह विरह की चरम व्यथा है।